पर जीव देह की क्रियाओं से अलग हो जाता है। जो इस दृष्टि से युक्त है, वही यथार्थ द्रष्टा है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा।।३१।।

यदा=जब; **भूत**=जीवों के; **पृथक् भावम्**=पृथक् आकारों को; **एकस्थम्**=एक में; **अनुपश्यति**=देखता है; **ततः एव**=उससे ही; **च**=तथा; **विस्तारम्**=विस्तार है; **ब्रह्म**=ब्रह्मतत्त्व को; **संपद्यते**=प्राप्त होता है; **तदा**=उस काल में।

अनुवाद

जब विवेकी पुरुष प्राकृत देहों में भेद के कारण प्रतीत होने वाले स्वरूपों के भेद को नहीं देखता और परमात्मा से ही सब का विस्तार देखता है, तब वह ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त हो जाता है।।३१।।

तात्पर्य

जो यह देखता है कि जीवों के विविध आकार उनकी विविध इच्छाओं के कारण ही उत्पन्न हुए हैं, आत्मा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, वह यथार्थ देखता है। देह को आत्मा समझने के कारण हमें कोई देवता दिखता है, कोई मनुष्याकार दिखाई देता है, तो कोई कुत्ता-बिल्ली आदि। यह प्राकृत-दृष्टि है; सच्ची तात्त्विक दृष्टि तो इससे सर्वथा विलक्षण है। प्राकृत देह के नाश होने पर केवल एकरूप आत्मा रहता है। प्रकृति के संग के कारण ही इस आत्मा को भिन्न-भिन्न प्रकार की देह-योनियों की प्राप्ति होती है। जो यह देखता है, वह आध्यात्मिक दृष्टि से युक्त है। इसके परिणाम में आकारगत देवत्व-मनुष्यत्व, पशुत्व, दीर्घत्वह्रस्वत्व आदि भेदों से मुक्त होकर उसकी मति शुद्ध हो जाती है और वह अपने आध्यात्मिक स्वरूप में स्थित होकर कृष्णभावना का विकास कर सकता है। इस अवस्था में वह किस प्रकार देखता है, इसका वर्णन अगले श्लोक में है।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।३२।।

अनादित्वात्=अनादि (नित्य) होने से; **निर्गुणत्वात्**=दिव्य होने के कारण; **परम्**=माया से अतीत; **आत्मा**=आत्मा; **अयम्**=यह; **अव्ययः**=अविनाशी; **शरीरस्थः**=शरीर में स्थित; **अपि**=भी; **कौन्तेय**=हे अर्जुन; **न करोति**=न कुछ करता है; **न लिप्यते**=लिपायमान होता है।

अनुवाद

शाश्वत तत्त्व के द्रष्टा जानते हैं कि आत्मा दिव्य, सनातन और माया से परे है। हे अर्जुन! प्राकृत शरीर में स्थित होने पर भी यह आत्मा न तो कुछ करता है और न लिपायमान ही होता है।।३२।।